Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : **www.shisrrj.com**
OPEN ACCESS
© 2024 SHISRRJ | Volume 7 | Issue 1
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य में स्त्री चेतना के आंदोलन

शाहीन
शोधार्थी, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया।

Article Info
Publication Issue :
January-February-2024
Volume 7, Issue 1

Page Number : 57-61

Article History
Received : 01 Feb 2024
Published : 15 Feb 2024

सारांश: स्त्री-विमर्श का जो स्वरूप हमारे समक्ष हैं, उसके पीछे स्त्री मुक्ति आंदोलन की एक लंबी परंपरा दिखाई देती है । स्त्री मुक्ति आंदोलन चाहे वह पाश्चात्य हो या भारतीय स्त्री को अपनी मुक्ति के लिए एक है । स्त्री को अपने स्वत्व, अस्तित्व का एहसास करवाने में विभिन्न आंदोलनों, सामाजिक संस्थानों को संघर्ष करना पड़ा है । पाश्चात्य स्त्री आर्थिक स्वतंत्रता, मताधिकार, पुरुषों के समान स्थान पाने के लिए संघर्षरत हैं । लेकिन भारतीय स्त्री को आर्थिक स्वतंत्रता से भी अधिक स्वयं के जीवन को जीने के अधिकार प्राप्त करने का संघर्ष है । पाश्चात्य एवं भारतीय स्त्री आंदोलन परंपरा में एक लंबा अंतर दिखाई देता है जिसका दो अलग-अलग हिस्सों में विचार करना आवश्यक है । भारत में जो स्त्री आंदोलन की परंपरा दिखाई देती है वह कहीं-न-कहीं पाश्चात्य विचारों से प्रभावित दिखाई देती है ।

बीज शब्द- स्त्री, स्वतंत्रता, समानता, परंपरा, सामाजिक परिवर्तन।

मूल आलेख- पश्चिम में आज स्त्री की स्थिति सुदृढ़ दिखाई देती हैं लेकिन प्रारंभ में वहां भी नारी उतनी स्वतंत्र नहीं थी जितनी आज दिखाई देती है । आरंभिक काल में वह भी बंधक थी । मानव की आदिम अवस्था से लेकर मध्य युग तक नारी विभिन्न बंधनों में जकड़ी रही । मध्यकाल अथवा 18वीं शताब्दी तक आते-आते पश्चिम में नारी को अपने अस्तित्व की पहचान होने लगी, और उसने अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष किए । स्त्री मुक्ति के प्रश्न पर चिंतन और वैचारिक संघर्षों की शुरुआत पहले अमेरिकी और यूरोपीय जनवादी क्रांतियों की से पहले हुई थी । जन आंदोलन में सक्रिय जागरूक स्त्रियों ने मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार और स्वतंत्रता समानता भाईचारे की घोषणाओं को स्त्रियों के लिए भी लागू करने की मांग उठाई । प्राचीन काल में रोमन और सेल्ट में महिलाओं को स्वतंत्रता दी गई थी परंतु इसाई मत के प्रभाव में आने के बाद इसे कानूनी रूप से नकार दिया गया । मध्ययुग में कुंवारी लड़कियों को बहुत से अधिकार प्राप्त थे परंतु शादी के बाद उनके अधिकार उनके पतियों को सौंप दिए जाते थे । वे स्त्रियां दूसरे दर्जे की नागरिक थी । छठी शताब्दी में स्त्रीवादी लेखिका बी.सी. ग्रीस (B.C greece) ने स्त्रियों के समर्थन एवं शिक्षा के लिए लेस्बियन (सखी भाव) कविताएं लिखी तथा लड़कियों के लिए स्कूल भी खुलवाएं । 17वीं शताब्दी में अंग्रेज़ी लेखिका 'अपरा बेन' (aphra benn) ने पश्चिम भारत के दास प्रथा का विरोध किया । इसी समय में कुछ पुरुष भी स्त्रीवादी समर्थकों के रूप में सामने आए जिनमें न्यूटन (Newton), लॉक (Locke), वोल्तेयर (Voltaire) आदि प्रमुख थे । इनके अनुसार स्त्रियों के बारे में विचार उनके प्राकृतिक रूप में करना चाहिए अर्थात जैसा ईश्वर ने बनाया है न कि जैसे उन्हें बाद में श्रम के आधार पर बांटा गया ।

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

1789 की फ्रांस की क्रांति में स्त्रियों ने मुख्य भूमिका निभाई । स्त्रीवादी गतिविधियों के अंकुर मूल से इसी क्रांति के बाद उत्पन्न हुए। 1762 में शिक्षा पर रूसो के लेख 'एमिली' में कहा गया है कि "महिला और पुरुष एक दूसरे के लिए बने हैं लेकिन उनकी परस्पर निर्भरता समान नहीं थी...हम लोग उसके बिना उनसे अच्छी तरह जी सकते हैं । जबकि वह हमारे बिना नहीं...इसलिए महिलाओं की शिक्षा की संपूर्ण योजना पुरुषों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए । पुरुषों को खुश रखना, उनके लिए उपयोगी बनाना, उनका प्यार और सम्मान जीतना, उनकी देखभाल करना । ये सब नारियों के कर्तव्य हैं और इनके विषय में उन्हें बचपन से सिखाया पढ़ाना जाना चाहिए ।"[1] सन 1789 की क्रांति ने उन धारणाओं को तोड़ दिया । स्त्रियों ने स्वयं के लिए समान शिक्षा तथा समान अधिकार की बात की। 1793 में 'नेशनल कान्वेशन वूमेंस क्लब' की स्थापना हुई । अंग्रेजी लेखक टेलेरेंड (Talleyrund) ने 8 साल तक की लड़कियों की शिक्षा की मांग की जिसे अंग्रेजी सरकार ने स्वीकार किया । 1791 में ही ओल्म्पी द जॉर्ज ने अपनी पुस्तक राइट्स ऑफ वूमेन (Rights of Women) में स्त्री स्वतंत्रता की बात की तथा उसे पुरुषों के समक्ष लाकर खड़ा कर दिया ।

सन 1792 में ब्रिटिश अनुवादक तथा लेखिका मेरी वोल्सटनक्राफ्ट की पुस्तक 'स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन' (Vindication of the Rights of Women) ने स्त्री विमर्श के संघर्ष को एक नई दिशा दी । यह पुस्तक स्त्री संघर्ष में मील का पत्थर साबित हुई । मेरी वोल्सटनक्राफ्ट ने रूसो टेलयार्ड की बातों का विरोध करते हुए कहा कि "स्त्री का कार्य सिर्फ पुरुष के जीवन को आसान बनाना तथा उनकी सेवा करना ही नहीं है, उसका स्वयं भी एक स्वतंत्र असितत्व है । स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं है इसलिए स्त्री को पुरुष के बराबर समानता तथा स्वतंत्रता का अधिकार है ।"[2]

सन 1793 में महिलाओं के 'राजनीतिक क्लबों' को दबाया गया, उनकी राजनीतिक हिस्सेदारी का विरोध किया गया । कानून में नेपोलियन की संहिता लागू की गई जिसके अंतर्गत महिलाओं को पुरुषों के सामान रखा गया । महिलाएं पुरुषों की अधीनता से एक लंबे संघर्ष के बाद मुक्त हुई थी । 1870 में जाकर उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश मिला, 1875 में मेडिकल की पढ़ाई करने की अनुमति और 1890 में कानून का पेशा अपनाने की अनुमति मिली । 1873 में जॉन स्टुअर्ट की किताब, महिलाओं का अधिनिकरण, (Subjection of women) छपी । 1884 में एंगेल्स की एक अलग ही नजरिये से लिखी गयी किताब 'परिवार, निजी,सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' प्रकाशित हुई । अमेरिका के साउथ राज्यों में (जहाँ दास प्रथा प्रचलित थी) अंजेलिना ग्रिम्के नामक श्वेत महिला ने, जोकि दास प्रथा विरोधी अभियान में शामिल थी उसने एक घोषणा की 'कि जब तक उसे स्वयं मुक्ति नहीं मिलती वह नीग्रो इंसानों को गुलामी से मुक्त नहीं कर सकती ।' फ्रांस में विवाहित स्त्रिया अपनी आय का उपयोग नहीं कर सकती थी, 1938 तक उन्हें कानूनी हैसियत प्राप्त नहीं थी । स्त्रियों को मताधिकार दिलाना महिला आन्दोलन सबसे पहली सफलता थी । एमलिन पर्खस्ट स्त्री मताधिकारों के पहले समर्थक थे इनका उद्देश्य ब्रिटिश सोसायटी में महिलाओं के सामाजिक तथा राजनेतिक संघर्ष को मजबूत बनाना था । मताधिकार संयुक्त राज्य अमेरिका की संसद में 1919 में महिलाओं की मताधिकार देने के लिए संविधान में संशोधन किया गया । इंग्लैंड में मताधिकार 1927 में लागू हुआ । फ्रांस को इसके लिये 1944 तक इंतजार करना पडा । सिमोन द बोउवार राजनैतिक कार्यकर्ता की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' जो महिलाओं की समस्याओं और मुद्दों पर लिखी गई है । इसमें दर्शनशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान और मानवशास्त्र का सहारा लेते हुए ये साबित किया है कि स्त्रियों का दमन इतिहास और संस्कृति की उपज है । उनका कहना है- "स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है ।...जब हम मानव शब्द का उच्चारण करते हैं, तो उसमें पुरुष और स्त्री दोनों समाहित होते हैं ।"[3]

सन 1850-1864 एशिया और अफ्रीका की स्त्रियों ने परंपराओं और उपनिवेशवाद का विरोध करना आरंभ कर दिया । इन स्त्रियों की मांग 'औरतों को संपत्ति में समान अधिकार" था । परंतु यूरोप के अधिकांश राज्यों में उसके खिलाफ अत्याचार

पूर्ण रवैया अपनाया गया । अंग्रेजों के शासन काल में भारत में दहेज प्रथा, अरेंज मैरिज तथा सिर्फ पुरुषों के लिए शिक्षा पर बल दिया गया 1905 में भारतीय स्त्रियों ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर दिया । 1917 में वह 'वुमेन इंडिया एसोसिएशन' की स्थापना की गई । 1923 में 'इंडियन फेडरेशन' की स्थापना हुई तथा 1924 में लड़कियों की शादी की उम्र 16 साल कर दी गई । स्त्रीवादियों को उनके पश्चिमी देशों में पूर्ण रुप से सामाजिक आर्थिक तथा कानूनी समानता मिली । सबसे अहम स्त्रियों को जन्म नियंत्रण का अधिकार मिला जिसे 1960 में विश्व स्तर पर प्रतिबंधित कर दिया गया । इसी समय में गर्भपात (Abortion) का प्रचार हुआ परंतु यह बहुत सुरक्षित नहीं माना गया देश के कई हिस्सों में यह अभी भी विवादित है । कई स्त्रीवादी समर्थक स्त्रियों ने स्त्रियों की शारीरिक (देहिक) को प्रोत्साहित कई लोगों के साथ शारीरिक संबंध को मान्यता दी । देहिक स्वतंत्रता की यह मांग 1980 के समय में ज्यादातर देखने में आई ।

बेट्टी फ्राइडन (अमेरिका) की किताब 'द फेमिनीन मिस्टीक' (the Feminine Mystique) ने स्त्री की समाज में वास्तविक दशा तथा उनके स्थान पर प्रकाश डाला । उन्होंने सम्पन्न परिवारों की पढ़ी लिखी औरतों को महिला आन्दोलन की राजनीति में उतारा जिन्हें राजनीति का अनुभव नहीं था, "पुरुष प्रधान समाज ने मनोवैज्ञानिक दबाव डालकर स्त्रियों को वासनापूर्ति का साधन बनने और माँ गृहणी तथा रमणी की भूमिकाएँ ही स्वीकार करने के लिए विवश किया है । इसी से स्त्री की मौलिक प्रतिभा कुंठित हुई ।"[4] इसी समय अमेरिका में 'इक्वल पे एक्ट' 'सिविल राइट्स' और 'न्यू लेफ्ट' आंदोलनों का भी विकास हुआ ।

1970 में 'अश्वेत महिला आन्दोलन' अधिक सक्रिय हुआ । प्रसिद्ध अश्वेत लेखिका एलिस वोकर ने नारीवाद के विकल्प में 'वुमनिस्ट' शब्द का निर्माण किया । ताकि ब्लैक और श्वेत नारीवादों की भिन्नता को चिन्हित किया जा सके । ब्रिटेन में 1974 में एक 'अश्वेत महिला आन्दोलन' बना जिसकी सदस्य ब्रिटेन की कैरिबियन और एशिया के भूतपूर्व उपनिवेशों की प्रवाशी थी । अश्वेत आन्दोलन के विकास में प्रमुर्ख अवरोध श्वेत महिला आन्दोलन का नस्लवाद था । अश्वेत महिलाओ के जीवन से सम्बन्धित कई मामलों पर श्वेत महिला आन्दोलन ने उनकी राय नहीं मांगी, जैसे प्रजनन सम्बन्धी मुद्दों तथा जनसँख्या नियंत्रण नीतियों अश्वेत समाज पर थोपना आदि । आज पूंजीवादी व्यवस्था ने सारी व्यवस्था पर अपना प्रभुत्व जमा लिया है । पूंजीवादी उपभोक्तावाद ने महिला आन्दोलन के कई सफल संघर्षों को अपने कार्यक्रम में मिला कर उनकी आलोचनात्मक धार को खोखला कर दिया है आज नारीवाद पूंजीवाद पर अपनी समझ विकसित नहीं कर पाया है । जन-आंदोलनों में नारीवादी चिन्तन का प्रभाव सपष्ट दिखाई देता है । पश्चिम में नारीवाद एक विचारधारा के रूप में उभरकर तब सामने आया, जब वहाँ की औरतों को मूलभूत अधिकार प्राप्त हो चुके थे. हालांकि इसके लिए उन लोगों ने अलग -अलग छिटपुट रूप से ही सही, लंबी लड़ाइयाँ लड़ी थीं, तब जाकर उन्हें मताधिकार जैसे नागरिक अधिकार, राजनीतिक और कुछ आर्थिक अधिकार प्राप्त हुए । चूँकि उन्हें मूलाधिकार मिल चुके थे, इसलिए उनके मुद्दे उससे बढ़कर यौनिकता, यौन स्वतंत्रता, स्त्रीत्व की अवधारणाओं, पुरुष के वर्चस्व आदि से जुड़ गए । इस विषय में उल्लेखनीय यह है कि वहाँ तब नारीवादी आन्दोलन उच्चवर्गीय श्वेत महिलाओं के कब्ज़े में ही था, निम्नवर्गीय अथवा अश्वेत नारियाँ इससे अलग थीं ।

भारतीय संदर्भ

उन्नीसवीं शताब्दी का युग पुनर्जागरण का युग था । इस शताब्दी में स्त्री-प्रश्न महत्वपूर्ण होकर सामने आए । स्त्री की स्थिति पुन: व्याख्यायित हुई । भारतीय मानस पर यूरोप की स्वतंत्रता तार्किक और मान्यता के विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा । फलस्वरुप विचारों में खुलापन आया । बहुत से अन्य प्रश्नों के साथ स्त्री प्रश्नों को विचार के केंद्र में रखा गया । स्त्री की सामाजिक स्थिति के संबंध में पुनर्जागरण के प्रणेता अत्यधिक संवेदनशील और चिंतित थे । 19वी शताब्दी में लगभग सभी

सुधारकों ने समाज में सती-प्रथा तथा विधवाओं की दयनीय स्थिति की ओर ध्यान दिया, उनके पुनर्विवाह का समर्थन किया जनचेतना द्वारा सुधार करने की चेष्टा की । इस क्षेत्र में ईश्वरचंद विद्यासागर, पंडित रमाबाई, ज्योतिबा फूले आदि ने सराहनीय कार्य किए । बंगाल में ब्रह्म समाज, पंजाब तथा उत्तर भारत में आर्य समाज की स्थापना हुई । इनके कार्यक्रमों में नारी जागरण को प्रमुख स्थान दिया गया । इतना ही नहीं उसे कानूनी समानता देने के लड़ाई भी इन विचारकों ने लड़ी ।

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज सरकार ने सती-उन्मूलन 1829, विधवा पुनर्विवाह 1856, बालिका हत्या पर पाबंदी 1870 कानून पास किए । लेकिन हिंदुओं के उत्तराधिकार तथा विवाह संबंधी कानूनों को छुआ तक नहीं । बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में कई स्थानीय और राष्ट्रीय महिला संगठनों का उद्भव हुआ । इन संगठनों ने सामाजिक सुधारों के साथ-साथ मत देने का अधिकार भी मांगा । 1929 में बाल विवाह पर रोक लगाने के बाद यह संगठन तलाक, उत्तराधिकार तथा संपत्ति के अधिकार के मामले में उठाने लगे । 1934 में 'ऑल इंडिया वूमेंस कांफ्रेंस', 1937 में 'हिंदू विमेन्स राइट टू प्रॉपर्टी कानून', 1955 में 'हिन्दू विवाह कानून', 1956 में 'हिन्दू उत्तराधिकार कानून', 'हिंदू अल्पवयस्क और संरक्षण कानून' तथा 'हिंदू गोद लेने तथा पालने का कानून' बनाया । "समाज सुधार तथा राष्ट्रीय आंदोलन के इस दौर में स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के प्रयास हुए । उनके परिणामस्वरुप स्त्रियों ने राजनैतिक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करानी आरंभ कर दी । वे भी तत्कालीन परिस्थितियों और अपने सामर्थ्य के अनुसार समाज' परिवर्तन, आजादी तथा शोषण के विरुद्ध संघर्ष में अपना सक्रिय योगदान दे रही थी ।"[5]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्यता स्त्रियों के लिए खुली थी । "1889 में कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में मुंबई में 10 महिलाओं ने भाग लिया । इससे पहले 1886 में स्वर्ण कुमारी सखी समिति की स्थापना की । क्रांतिकारी आंदोलन भी स्त्रियों की भागीदारी से अछूते नहीं रहे । बीसवीं सदी के तीसरे दशक में कल्पना जोशी, शांति सुनीति, श्रीमती रूपवती जैन, दुर्गा देवी क्रांतिकारी आंदोलनकारियों में थी, उधर मैडम के.आर. कामा भारत में क्रांतिकारी साहित्य भेजने में लगी थी ।"[6] 1917 में स्त्रियों ने सरोजनी नायडू के देखरेख में 'विमेन्स इंडिया एसोसिएशन' के तत्वाधान में सर्वप्रथम पुरुषों के सामान अधिकारों की मांग की । 1928 में कांग्रेस ने लिंग समानता तथा व्यस्क मताधिकार के सिद्धांत को मान लिया । 1931 में कराची कांग्रेस की कानून की नजर में सभी धर्मों, जातियों तथा लिंगों की समानता के सिद्धांतों को माना तथा स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान स्तर की मांग की । 19वीं शताब्दी में स्त्रियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती थी । औद्योगिक क्रांति हो रही थी । किंतु उसके लाभ से स्त्री वंचित थी । कृषि तथा अन्य ग्रामीण अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों में कुल मजदूरों में 32.2 प्रतिशत स्त्रियाँ काम कर रही थीं । पारंपरिक सेवा क्षेत्र जैसे नाई, धोबी, सफाई, दाई आदि के कामों में 13.2 प्रतिशत, अन्य बाजारों के लिए उत्पादन तथा व्यापार में 11.2 प्रतिशत स्त्री-मजदूर काम कर रही थी ।'

आधुनिक उद्योगों में स्त्रियों की संख्या में कमी का एक मुख्य कारण इन उद्योगों का ऐसी जगह स्थापित होना था । जहाँ सामाजिक तथा सांस्कृतिक बंधनों के कारण स्त्रियों के उत्पादन प्रक्रिया में भागीदारी पहले ही कम थी । 'फैक्ट्रियां में काम करने वाली स्त्रियां यौन शोषण काफी शिकार होती थी । जहां स्थानीय मजदूर महिलाए अनुकूल वातावरण के अभाव में आधुनिक मीलों में काम करने में कतराती रही, वहीं पर सुदूर प्रांतों से अकेली गरीब स्त्रिया अपनी बिरादरी के पुरुषों के साथ मजदूरी करने आती थी । इन सभी स्त्रियों का इनके 'संरक्षक' साथी पुरुष मजदूर यौन-शोषण करते थे । इनसे मजदूरी कराने के अलावा वेश्यावृत्ति भी करवाते थे तथा मजदूरी में वेश्यावृत्ति से कमाया हुआ धन यह स्वयं हड़प लेते थे । इस प्रकार इन स्त्रियों को मीलों में मजदूरी करने तथा साथी 'संरक्षक' मजदूर का आर्थिक तथा यौन शोषण सहने के बावजूद वृद्धावस्था, बीमारी आदि की हालत में भी सामाजिक सुरक्षा नहीं मिलती थी ।' आर्थिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष में तथा मजदूर वर्ग के आंदोलनों में हमेशा मजदूरनियाँ सक्रिय रही । 1928-1929 में उन्होंने कोलकाता हावड़ा वाल्मीकियों तथा जूट मिल मजदूरों

की हड़ताल में भाग लिया । 1927 में मजदूर किसान पार्टी ने बंगाल में स्केविन्जर्स यूनियन की स्थापना की । इसकी सचिव प्रभावती दासगुप्ता थी ।

गांव से पलायन कर आई इन मजदूर स्त्रियों के लिए आवश्यक सुविधाएं भी मिल प्रबंधक नहीं देते थे । महिलाओं की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए 'शिक्षा' को एक महत्वपूर्ण जरिया माना गया, क्योंकि अशिक्षा के कारण ही आर्थिक विपन्नता, घरेलू समस्याएं आदि उत्पन्न होते हैं । लीला विश्वनाथन में भी अपने केरल के अध्ययन (1993) में 'महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण बताया ।' क्योंकि शिक्षा में कमी के कारण स्त्रियां अच्छे रोजगार प्राप्त नहीं कर पायेंगी और उनकी आर्थिक स्थिति दिन-ब-दिन गिरती चली जाएगी ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 19वीं शताब्दी में जो विभिन्न आंदोलन चलाए गए, वे स्त्रियों के हित के लिए ही चलाए गए । लेकिन इन आंदोलनों के चलते स्त्री की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थिति में सुधार अवश्य हुआ किंतु वह पूर्ण रूप से सामाजिक बंधनों से मुक्त नहीं हो पाई । इस शताब्दी में शिक्षा के प्रचार-प्रसार का लाभ स्त्री वर्ग के लिए महत्वपूर्ण साबित हुआ । विभिन्न रीति-रिवाज, परंपराओं, कुप्रथाओं जैसे बाल विवाह, सती प्रथा से स्त्री मुक्त हुई, इसका कारण विभिन्न महान व्यक्तियों द्वारा किए गए सुधारवादी आंदोलन रहे । भारत में वर्तमान नारीवादी अवधारणा इस बात पर विचार करती है कि गरीब, ग्रामीण, दलित और अल्पसंख्यक महिलाओं की समस्याएँ अलग हैं और धनी तथा सवर्ण औरतों की अलग, भिन्न ढंग से विचार करना चाहिए इन पर भिन्न-भिन्न ढंग से विचार करना चाहिए. वर्तमान नारीवाद नारी के साथ ही उन सभी दलित और शोषित तबकों की बात करता है, जो सदियों से समाज के हाशिए पर धकेल दिए गए हैं. यह मानता है कि स्वयं नारीवादी आंदोलन के अंतर्गत कई धाराएँ एक साथ काम कर सकती हैं, भले ही उनके रास्ते अलग-अलग हों पर उनका गंतव्य एक ही है. इसलिए सबको एक साथ आगे आना चाहिए

संदर्भ

1. Rubinstein, David- before the suffragettes:womens Emancipation in the 1890, page no.-15
2. angela martin- the beginning of feminism in Europe simply...A history of feminism, page no.-3
3. सिमोन द बोउवार- the सेकंड सेक्स, अनु.- प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या-23
4. साधना आर्य, निवेदिता मेनन- नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवम् मुद्दे, पृष्ठ संख्या-111
5. डॉ. गोपा जोशी- भारत में स्त्री समानता: एक विमर्श, पृष्ठ संख्या-52
6. डॉ. गोपा जोशी- भारत में स्त्री असमानता: एक विमर्श, पृष्ठ संख्या-55